भारतीय आश्रम व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। यहां जीवन जीने की एक पद्धति है। यहां पर बाहरी और आन्तरिक जगत में समन्वय बैठाने के लिए दोनों को महत्व दिया गया है। पाश्चात्य सभ्यता में केवल बाह्य जगत को महत्व दिया गया है। वे जड़ पदार्थ को अधिक महत्व देते हैं। भारतीय ऋषियों और महर्षियों ने शरीर को एक प्रयोगशाला बनाकर शोध कार्य किया और आत्मशुद्धि को अधिक महत्व दिया गया है। सौ वर्ष तक जीवन जीने की कामना की गयी है। जीवन के हर क्षेत्र को महत्व दिया गया है। जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया है– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

ब्रह्मचर्य आश्रम प्रथम आश्रम है। इसमें शिष्य ऋषियों के आश्रम में, गुरुकुल में अपने श्रम के द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। इस आश्रम को प्रमुख उद्देश्य विद्या की प्राप्ति थी। प्राचीनकाल में चौदह विद्याएं बतलायी गयी है। ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मचारी गुरु के आश्रम में और उनके सान्निध्य में इन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करता था। दूसरा महत्वपूर्ण आश्रम गृहस्थ आश्रम है। गृहस्थ आश्रम ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करने और नियतकाल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करने और सत्य धर्म में ही अपना तन, मन, धन लगाने और धर्मानुसार संतानोतपति करने का उतरदायित्व रहता था।

गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त कर, गुरुगृह से स्नातक बनकर विवाहोपरान्त प्रवेश करता था। जैसे वायु के आश्रय से जीवों का जीवन होता है, वैसे ही गृहस्थ आश्रम से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी आदि सब आश्रम वासियों का निर्वाह होता है। ऋषियों के सान्निध्य में उनके द्वारा प्राप्त शिक्षा का उपयोग मनुष्य इस जीवन में करता है।

गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम का प्रारम्भ होता था। वन की ओर प्रस्थान करना वानप्रस्थ आश्रम था। इस आश्रम में नित्य वेद पाठ कर जप को स्थिर रखना, शीत, ग्रीष्म आदि को सहन करना और सब प्राणियों पर दया रखने का भाव इस आश्रम में रहता था। चौथा आश्रम संन्यास आश्रम कहलाता है। संन्यास आश्रम महत्वपूर्ण आश्रम है। इस आश्रम में समस्त आसक्तियों का त्याग करके परिब्राजक होकर संन्यास आश्रम में प्रवेश किया जाता था। इसमें हर्ष शोकादि द्वन्द्वों से विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म में अवस्थित होता है। परिब्राजक उसे कहते हैं जो सबकुछ त्यागकर वनों में या प्रकृति के अंचल में अपना निवास बना लेता है।

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में आध्यात्मिक उन्नति के लिये प्रवृत्ति होती थी। मनुस्मृति में कहा गया है कि 'जब गृहस्थाश्रमी पके हुए बाल तथा अपने पुत्र के पुत्र को देख ले, तब वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे। सर्वदा वेदाभ्यास में लगा रहे, ठंडा–गर्म, सुख–दुःख, मान–अपमान आदि द्वन्द्वों को सहन करे, सबसे मैत्री भाव रखे, दानशील बने, दान न ले और सब जीवों पर दया करे। वानप्रस्थ और संन्यास दोनों आश्रमों में ब्रह्मचर्य का पूर्ण–पालन करना होता है। दोनों आश्रमों में अन्तर यही है कि वानप्रस्थ आश्रम में पुरुष स्त्री के साथ भी रह सकता है, पर संन्यासाश्रम में नहीं। वानप्रस्थ में अग्नि प्रज्वलित रखनी पड़ती है, पर संन्यासी अग्नि आदि का त्याग कर देता है। संन्यासी को इन्द्रियों पर संयम रखना और परमतत्त्व का ध्यान करना होता है।

आश्रम व्यवस्था के बाद समाज व्यवस्था को चलाने के लिए हमारे देश में वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्ण हैं। ब्राह्मण का कार्य समाज को शिक्षा देना, क्षत्रिय का काम राष्ट्र की रक्षा करना, वैश्य का कार्य समाज का भरण–पोषण करना और शूद्र का कार्य सेवा करना निर्धारित था। गुरुकुल प्रणाली ऋषि परम्परा की प्रणाली थी। आश्रमों में विद्यार्थी प्रातः उठकर नित्य कर्म करके मंद सुगंध वायु का सेवन करने के लिए आश्रमों में भ्रमण किया करते थे। यह आश्रम प्रकृति के नजदीक रहता था। जीवन में अनुशासन का पाठ ऋषियों के सान्निध्य में ही विद्यार्थी प्राप्त करता था। इस आश्रम में आत्म तत्वों को जानने की प्रेरणा मिलती थी। उन्हें यह शिक्षा दी जाती थी की जियो और जीने दो।

प्राचीन काल में राजसत्ता को नियंत्रित करने के लिए गुरु परम्परा का विधान था। राजा भी गुरुओं को महत्व देते थे। कोई भी निर्णय गुरु के परामर्श से ही लिया जाता था। गुरु रिद्धि–सिद्धि सम्पन्न होते थे। किन्तु आजकल यह परम्परा लुप्त हो गयी है। स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए ऋषि परम्परा का पुनरुत्थान करना है। मनुष्य कितना भी आर्थिक रूप से सम्पन्न हो जाए किन्तु जब तक मानसिक शांति नहीं प्राप्त होती सबकुछ बेकार है। मानसिक शांति के लिए स्वार्थ, परार्थ, परामर्थ की चेतना का विकास होना जरूरी है। संन्यास की इच्छा तभी करनी चाहिए जब सभी पदार्थों के प्रति मन में पूर्ण विरक्ति हो जाये। इसके विपरीत आचरण मनुष्य को पतित करने वाला है। वैराग्य होने पर ही संन्यास ग्रहण करना चाहिए। आश्रम व्यवस्था समाज को सुदृढ़ करने की आधारशिला है।